Journal of Advance Research in Science and Social Science (JARSSC) **ISSN:** 2582-2004
Official Publication of Indian Mental Health & Research Centre Volume 02, Issue 02
DOI: 10.46523/jarssc.02.02.26
Multidisciplinary, Open Access
Impact Factor: 3.575

भारतीय समाज में जातिप्रथा का परिदृश्य

डॉ. सय्यद आसिम रिज़वी
असिस्टेंट प्रोफेसर (Contractual), समाजशास्त्र विभाग, शिया पी जी कॉलेज लखनऊ

भारतीय समाज की जाति व्यवस्था एक जटिल एवं सप्रभावी विशिष्टतता है। यद्यपि इसकि उत्पत्ति प्रारंभिक समाजिक व्यवस्था में दृष्टिगोचर नहीं होता तथापि यह सामाजिक व्यवस्था के विकास के साथ हीं अपने वास्तविक स्वरूप; जन्म के आधर परद्ध उदित होता गया। प्रारम्भिक समाज में खास कर प्रागैतिहासिक एवं आद्य ऐतिहासिक काल में इसके जाति व्सवस्था का कोइ प्रमाण नहीं मिलता क्योंकि तब समाज कबिलाइ समाज थी।) ग्वैदिक काल; 1500-1000 ई. पू.द्ध में वर्ण व्यवस्था का उल्लेख)ग्वेद के 10वें मण्डल में मिलता है।1 जहाँ विराट पुरूष के मुख से ब्राहम्ण, बाहु से क्षत्रिय, जांघ से वैश्य तथा पद से शूद का उत्पन्न बताया गया है। इस काल में व्यक्तियों का वर्ण जन्म के आधर पर न होकर कर्म के आधर पर था। लेकिन कलांतर में बड़े राज्यों के उदय के साथ हीं वर्ण व्यवस्था जटिल होती चली गई, अब वर्ण कर्म के आधर पर न होकर जन्म के आधर पर माना जाने लगा तथा हिन्दू समाज अनेक समूहों में विभक्त हो गया और यह जाति-व्यवस्था के स्वरूप में परिवर्तित हो गया। इन जातियों का रहन-सहन, स्तर, व्यवहार और आचरण में सम्यक अंतर है इस संस्थाओ में अनेकानेक निषेध, प्रतिबंध, कठोरता और जटिलताएँ है। किन्तु पिफर भी इस संस्था का तारतम्य और सौष्ठव बराबर बना रहा है। यद्यपि इसके विकसित होने में सैकड़ों वर्ष लगे हैं, तथापि समय-समय पर होने वाले परिवर्तन, प्रादेशिक उलट-पफेर, विदेशी आक्रमण, विभिन्न व्यवसायिक गतिविध्यिा, प्रारस्परिक अन्तरताएँ तथा वर्ण-विरू (विवाह आदि अनेक तत्वों ने इसके विस्तार में महत्वपूर्ण योग प्रदान किया। ‘जाति’ शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की ‘जन’ धतु से मानी जाती है, जिसका अर्थ, प्रजाति, जन्म अथवा भेद से लिया जा सकता है। अंग्रेजी में जाति के लिए ‘कास्ट’ शब्द का व्यवहार किया जाता है। यह कास्ट शब्द पुर्तगाली शब्द कास्टा से बना है जिसका अर्थ नस्ल, प्रजाति और जन्म है। इसके साथ हीं ‘कास्ट’ को लैटिन शब्द ‘कास्टस’ से भी व्युत्पन्न हुआ बताया जाता है। वस्तुतः इसका संबंध् प्रजातीय अथवा जन्मगत आधर पर स्थित व्यवस्था से माना जा सकता है। आध्ुनिक समाजशास्त्रियों ने भारतीय जाति-प्रथा पर विभिन्न दृष्टियों से विचार किया है तथा यह बताया है कि जाति-प्रथा जन्म से प्रभावित और वर्गगत ढ़ाचे पर आधरित ऐसी प्रथा है जिसमें आव(ता भी है और गतिशीलता भी है। भारतीय समाज की जाति व्यवस्था परम्परागत रूप मंे वंशानुगत होती चली गई। जो विभिन्न विचारों के साथ परस्पर विरोध्ी अनेक गुटों में विभाजित होकर वंशानुगत होती गई। और संस्तरणे के आधर पर क्रमागत बन गई। इसमें रक्त संकरता अउ्रैर व्यवसाय परिवर्तन नहीं गृहीत किये जाते। साथ हीं इसमें नये सदस्यों को भी नहीं स्वीकार किया

Received: 03.05.2019 **Accepted:** 26.05.2019 **Published**: 26.05.2019

This work is licensed and distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (https://creativecommons.org/licenses/by/4.0), which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any Medium, provided the original work is properly cited.

Journal of Advance Research in Science and Social Science (JARSSC) **ISSN:** 2582-2004
Official Publication of Indian Mental Health & Research Centre Volume 02, Issue 02
DOI: 10.46523/jarssc.02.02.26
Multidisciplinary, Open Access
Impact Factor: 3.575

जाता।3 इस स्वरूप के अन्तर्गत जाति-प्रथा के तीन प्रमुख तत्वों का दिग्दर्शन होता है पहला तो यह है कि जाति व्यवस्था के विभिन्न जातियाँ एक दूसरे का विरोध्ी होती है। जिसके कारण वे अलग-अलग बनी रहती है। दूसरा यह कि इसमें जन्म को प्रधनता देते हुए व्यवसाय, रक्त, विवाह आदि की अपनी विशेषता परिलक्षित की जाती है जिससे प्रत्येक जाति एक दूसरे से पृथक रहती है। तीसरा यह कि ये जातियाँ से ग्रस्त रहती है।

ऐसी स्थिति में जाति को एक सामाजिक समूह के रूप में स्वीकार किया जा सकता है तथा इसकी दो विशेषताएँ मानी जा सकती है एक तो यह कि जाति की सदस्यता उन्हीं व्यक्तियों तक सीमित रहती है। जिसमें उसका जन्म होता है और दूसरा यह कि इसके सदस्य अनिवार्य सामाजिक नियम के कारण दूसरे समूह में विवाह करने से अवरू(कर दिये जाते हैं।4 ऐसी विशिष्टताएँ भारतीय जति व्यवस्था में विद्यमान थी। और यह आज भी प्रचलित है। भारतीय समाज के अन्तर्गत निवास करने वाली विभिन्न जातियों की अपनी कतिपय विशेषताएँ हैं इन जातियों का विकास विभिन्न जाति-समूहों के रूप में जन्म के आधर पर हुआ, जिनका अपना स्वतंत्रा विकाशील जीवन, भिन्न-भिन्न मान्यताएँ और अपनी पृथक संस्कृति थी।

भारतीय समाज में जाति निरंतर प्रवाहमान रहा। सिपर्फ उसमें जातियों की संख्या, उपजातियाँ की संख्या बढ़ती गई। खास कर तब जब बड़े-बड़े राज्यों का उदय हुआ जनसंख्या बढ़ी, अनेक आर्य एवं आर्येत्तर जातियाँ भारतीय समाज में प्रवेश की। अनेक व्यवसाय पर जातियों का उदय हुआ, कर्मकार, लोहार, बढ़ई, चित्राकार, कलाकार। इन जातियों की संख्या बढ़ी और संगठित होकर एक शक्तिशाली स्वरूप धरण कर ली। वैदिक साहित्य में जाति शब्द का उल्लेख नहीं मिलता है किंतु ऐसे वर्गो के नाम मिलते हैं जो परवर्ती काल में जातियाँ बन गई जैसे कि उग्र, क्षत्राृ, सूत, पौलकस, चांडाल, आयोगव पंचाल और वैदेह आदि। उग्र शब्द)ग्वेद में शक्तिशाली पुरूष के अर्थ में वृहदारण्यक उपनिषद में प्रशासनिक अध्किारी के अर्थ में और वेदोत्तर काल के साहित्य में एक जाति के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। वृहदारण्यक उपनिषद में पौल्कस का उल्लेख चांडाल के साथ हुआ है। उक्त विवेचना से स्पष्ट है कि वैदिक काल में ऐसे कुछ तथ्य विद्यमान थे जिनसे परवर्ती काल में जातियों की उत्पत्ति हुई। डा॓0 काणे का विचार है कि ब्राहम्ण ग्रंथो के रचनाकाल में हीं ब्राहम्ण, क्षत्रिय, वैश्य जन्म के आधर पर हीं अपना वर्गीकरण कर चुके थे। तथा इस काल में अनेक अनार्य और आदिम जातियाँ आर्य समुदाय में प्रवेश कर चुकी थी।6

धर्मसूत्रों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस काल में वर्ण जातियों में परिवर्तित होने लगे थे। अब व्यक्ति का वर्ण साधरणतया उसके जन्म के आधर पर निर्धरित किया जाता था। ध्मसूत्रो में ब्राहम्णों को सभी से श्रेष्ट माना गया है। गौतम से ज्ञात होेता है कि ब्राहम्ण व्यापारी का भोजन तो ग्रहण तो कर लेते थे किन्तु शिल्पियों का नहीं करते थेे। ब्राहम्णों ने अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए यह प्रचार किया कि

Received: 03.05.2019 **Accepted:** 26.05.2019 **Published**: 26.05.2019

This work is licensed and distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (https://creativecommons.org/licenses/by/4.0), which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any Medium, provided the original work is properly cited.

Journal of Advance Research in Science and Social Science (JARSSC) **ISSN:** 2582-2004
Official Publication of Indian Mental Health & Research Centre Volume 02, Issue 02
DOI: 10.46523/jarssc.02.02.26
Multidisciplinary, Open Access
Impact Factor: 3.575

हीनवर्णों के व्यक्ति भी ध्र्म का पालन करने पर उत्तरोत्तर जन्मों मंे उच्चत्तर वर्णों में जन्म लेते हैं। यद्यपि ध्र्म सूत्रो में अध्ययन, यज्ञ करना, दान करना क्रमशः तीनों वर्णो ब्राहम्ण, क्षत्रिय एवं वैश्य के कत्र्तव्य बताएं गये हैं। पर वास्तविक स्थिति इससे भिन्न थी। गौतम ध्र्मसूत्रा में ब्राहम्णो को अपने सेवकों के द्वारा कृषि, व्यापार, और साहुकार कराने की अनुमति दी गई। ये सब वैश्यों के कार्य थे। बाद में ये सब अलग-अलग जातियों में परिवर्तित हो गये। बौ(साहित्य एवं जैन साहित्य में वर्ण व्यवस्था की निन्दा की गई है तथा कर्म आधर पर वर्णो का स्वरूप बताया गया है। चार वर्णों के अतिरिक्त कुछ ऐसे व्यक्ति थे जिन्हें बौध् ग्रन्थो के अनुसार हीन जाति समझा जाता है। इनमें पाँच प्रमुख थी। चंडाल, वेण, निषाद, रथकार, पुक्कुस। प्राचीन पालि साहित्य में समाज का विभाजन दो वर्गो में किया गया है। उत्कृष्ट जाति और हीन जाति। ब्राहम्ण, क्षत्रियों एवं वैश्यों की गणना उत्कृष्ट जातियों में की गई है। विनयक पिटक ;लगभग चैथी सताब्दी ई.पू.द्ध से ज्ञात होता है कि वेणों, चंडालों, निषादों, रथकारो ने उस समय तक अपनी अलग जातियां बना ली किन्तु चमार, कुम्हार आदि हस्तशिल्पियों के वर्ग सम्मिलित नहीं थे। अतः इस कार्य में जातिप्रथा में इतनी संकीर्णता नहीं आई थी जितनी बाद में आई।

चैथी सताब्दी में भी चारो वर्णों के प्रायः वे हीं सब कत्र्तव्य बताये गये हैं जिनका उल्लेख ध्र्मसूत्रों में है। कौटिल्य7 एवं मनु ने भी चारो वर्णों का कत्र्तव्य परमपरागत हीं बताया है। लेकिन इसकाल की सबसे विशिष्ट बात यह है कि अनेक विदेशी जातियों का भारत आगमन था। जिसमें यवन पह्लव, शक, कुषाण जैसी अनार्य जातियां उल्लेखनीय है यह विदेशी जातियां भारतीय समाज में सम्मिलित हो गई। भारतीय परम्परागत वर्ण इनसे बचने का भी प्रयास किया गया। तत्कालीन साहित्यो में इन विदेशी आक्रमणकारियों को मलेच्छ कहा गया है। पिफर भी ये भारतीय समाज में घुल-मील गई। स्वयं मेगस्थनीज ने बताया है कि भारत के तत्कालीक समाज में सात प्रकार की जातिया थी। तथा ये भारतीय जातियां अपनी हीं जाति में विवाह करते थे।8 अब भी भारतीय मनुष्यों ने भारतीय वर्ण व्यवस्था में ब्राहम्णों की सर्वश्रेष्ठता बरकारार रखा। मनु ने बताया है कि समाज में ब्राहम्णों की स्थिति सर्वश्रेष्ठ है। इस काल से पूर्व ;300 ई.पू. से 200 ई.द्ध बौ(एवं जैन समप्रदाय के प्रवर्तक ने वैदिक वर्ण व्यवस्था को अमान्य कर दिया और बताया कि वर्ण का विभाजन कर्म के आधर पर होना चाहिए न कि जन्म के आधर पर। इसका यह प्रभाव पड़ा कि महाभारत9 और गीता में भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये गये हैं। कृष्ण स्वयं गीता में कहते हैं कि मैने गुण और कर्म के आधर पर समाज का विभाजन चार वर्णां में किया है। इस काल की प्रमुख विशेषता चार वर्णों के अतिरिक्त अनेक जातियों के साथ-साथ उप जातियों की उत्पत्ति हुई उसका प्रमुख कारण अंतर जातिय एवं प्रतिलोम विवाह थी। मनु ने ब्राहम्ण पिता एवं क्षत्रिय माता से उत्पन्न संतान को ब्राहम्ण एवं प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न संतान को ब्रात्य कहा है। मनु ने अंबष्ठ, निषाद, सूत, उग्र, विदेह, मागध् आदि 57 जातियों का उल्लेख किया है।10 इन सभी जातियों की उत्पत्ति

Received: 03.05.2019 **Accepted:** 26.05.2019 **Published**: 26.05.2019

This work is licensed and distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (https://creativecommons.org/licenses/by/4.0), which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any Medium, provided the original work is properly cited.

Journal of Advance Research in Science and Social Science (JARSSC) **ISSN:** 2582-2004
Official Publication of Indian Mental Health & Research Centre Volume 02, Issue 02
DOI: 10.46523/jarssc.02.02.26
Multidisciplinary, Open Access
Impact Factor: 3.575

अंतरजातीय विवाहों के पफलस्वरूप हुई है जैसे कि ब्राहम्ण माता एवं वैश्य पिता की संतान अंबष्ठ, निषाद आदि जातियों का उद्भव हुआ।

गुप्त काल के सामाजिक व्यवस्था में वर्णव्यवस्था का स्वरूप जातिगत अर्थात वंसगत बना रहा। यह काल ब्रहामणकाल, भागवत काल आदि नामों से भी जाना जाता है। इस काल में अनेक जातियों का उद्भव हो चुका था। ब्राहम्णों की सर्वश्रेष्ठता इस काल में भी बनी रही। उत्तर भारत में अंतर्वेदी ;गंगा यमुना के बीच का प्रदेशद्ध के ब्राहम्ण, राजस्थान में श्रीमाल, ब्राहम्ण और गुजरात में नागर ब्राहम्ण अपने को अन्य प्रदेशो के ब्राहम्णों से सर्वश्रेष्ठ समझने लगे। इस काल तक आते-आते अनेक जातियों का उद्य हो चुका था। जाति समाज का एक आवश्यक विशेषता बन गया।

गुप्तोत्तर काल में अनेक राजपूत वंशो का उदय हुआ जिसमें कुछ का अग्नि कुण्ड से उत्पत्ति हुई थी। राजपूत इस काल की सबसे लडाकू जाति के रूप में उभरी। उल्लेखनीय है कि यह काल राजपूत काल के नाम से जाना जाता है। राजपूतों की वंशो में चालुक्य, चहमान, चंदेल, प्रतिहार, परमार, सिसोदिया आदि महत्वपूर्ण वंशावलिया थी जो तत्कालिन भारत के विभिन्न क्षेत्रों में शासन करती थी। ब्राहम्ण इन राजाओं के पुरोहित या प्रधन मंत्राी के पद पर आसीन थे। वैश्यों में अनेक उपजातियां उद्भव हो चुका था तथा शूद्रो में भी यही स्थिति थी। सभी बाहरी जातियां जो उच्च वर्णो में स्थान नहीं पा सकी वह शूद्रो में जगह बना ली। ब्राहम्णों के भी अनेक उपजातियां, भीमदेव द्वितीय के पाटन अभिलेख में रायकवाल, सकराय माता अभिलेख में ‘दध्य’ या ‘दाहिया’ विक्रम संवंत 982 के पुष्कर अभिलेख में ‘पुष्कर’ और अन्य अभिलेखों में ‘आवसथिक’ पुरोहित, द्विवेदी, त्रिवेदी, चतुर्वेदी, मिश्र, दीक्षित और त्रिपाठियों का उल्लेख मिलता है। जिस किसी परिवार के पूर्वज इनमें से किसी वर्ग के थे उनके संतान अपने को उसी जाति का कहने लगे।11 बिहार में ब्राहम्णों की मैथिली, शकद्विपी ;गयावाल या मगद्ध मठ में द्राविड़ आदि उपजातियां बन गई।

इन सभी कालों में वैदिक कालिन वर्ण व्यवस्था में हीं अनेक जातियां एवं उपजातियां समाहित होती गई। जातियों का विभाजन जन्मगत, प्रदेशगत, व्यवसायगत, भाषागत, ध्मगत आदि विभिन्न आधरो पर आध्ुनिक समाज विश्लेषकों ने जाति को सात भागों में विभाजित किया है। तथा दर्शन विकसित करने की चेष्टा की है कि जतियों के ये सात भाग उनके अपने गुणों के आधर पर उत्पन्न हुये हैं।12 साथ हीं विभिन्न जातियां देश और काल के अन्तराल के साथ भारतीय समाज की इकाई बनी रही। जैसे-

जनजाति- देश के विभिन्न भागों में जनजातियां सदा से रहती आई हैं जो भारतीय समाज में अपने विभिन्न गुणों और विरोधे के साथ समाविष्ट हुई। यहा कहीं भी हिन्दु समाज के सम्पर्क में ये जातियां आयी अपने अस्तित्व को पूर्ण रूपेण खो बैठी और कालान्तर में हिन्दू समाज के सदस्य बन गई आर्यो की आगमन के पहले से देश में अनेक जनजातियां और आदिम जातियां थी जो उत्तर काल में आर्यो द्वारा शूद्र श्रेणी में गृहीत की गई।13

Received: 03.05.2019 **Accepted:** 26.05.2019 **Published**: 26.05.2019

This work is licensed and distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (https://creativecommons.org/licenses/by/4.0), which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any Medium, provided the original work is properly cited.

Journal of Advance Research in Science and Social Science (JARSSC) **ISSN:** 2582-2004
Official Publication of Indian Mental Health & Research Centre Volume 02, Issue 02
DOI: 10.46523/jarssc.02.02.26
Multidisciplinary, Open Access
Impact Factor: 3.575

व्यवसायपरक जाति- वस्तुतः वर्ण-व्यवस्था का सर्वप्रथम आधर व्यवसाय हीं था। तत्कालीन समाज में जो जिस कार्य को कर सकने की जितनी क्षमता थी उसे उस व्यवसाय का सदस्य बनाया जाता था। रथकार, चर्मकार, कर्मार, मणिकार, सुराकार, ऐसी हीं जातियां थी।14

सम्प्रदाय आश्रित जाति- भारत में ध्र्मों और सम्प्रदायों के विकास से समाज में अनेकानेक लोग उसके अनुयायी हो गये। और यह एक देव विशेष ;शैव ध्र्मद्ध के प्रति आस्था या लिगांयत सम्प्रदाय के प्रति आस्था के कारण लिंगायत जाति के रूप में विकासित हुई। आज भी यह जाति मुम्बई में एक जाति के रूप में निवास करती है।

वर्णशंकर जाति- अन्तर्जातिय विवाह से उत्पन्न संतान वर्णसंकर कही गई। इनके माता-पिता में से किसी का वर्ण अथवा जाति नहीं मिलता था। ऐसी संतान अपनी मूल जाति और समाज से बिलग मानी गई जो कलांतर में नई जाति के रूप मंे विकसित हुई।

राष्ट्रीय भावना से बनी जातियां - देश में अनेक ऐसी जातियां थी जिसका उद्धव राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत होकर बनी थी। जैसे-मरहठा ;अथवा मराठाद्ध जाति इसी राष्ट्रीय भावना से मुगलों के काल में दक्षिण में ;आध्ुनिक महाराष्ट्रद्ध में बनी थी।

प्रादेशिकता से बनी जाति- बहुध अनेक लोग समय-समय पर आजीविका के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर बस जाते थे। आवश्यकतानुसार विवाह भी दूसरे प्रदेश की स्त्रिायों से करके नई जाति के उदय में अनायास सहायक हो जाते थे।

रीति-रिवाज से बनी जातियां-कालान्तर में ऐसी जातियों का भी उदय हुआ जिन्होंने विभिन्न रीति-रिवाज और आचार-विचार अपनाये और उनका अनुगमन करने के कारण वे उसी विशेष जाति से सम्बन्धित हो गये। जाट और राजपूत जातियां एक प्रजाति से बनी तो आवश्य है किन्तु अब दोनों में पृथकता है। राजपूत जाति अपने को जाट से श्रेष्ट मानती है तथा क्षत्रिय जाति के समकक्ष समझती है।

अतः ऐसी प्रक्रिया द्वारा जातियों की संख्या में काफी विकास हुआ। ‘जाति’ शब्द का प्रथम उल्लेख ‘कृष्ण जाति’ के अर्थ में ‘निरूक्त’ में हुआ है।15

अग्निं चिःवा न रामानुपयात्।
रामा रमणायोपेयते न ध्र्माय कृष्णजातीया।।
निरूक्त. 12.13

वृहदारण्यकोपनिषद में वैश्य के जाति शब्द का व्यवहार किया गया है। अष्टाध्यायी में वर्ण शब्द के साथ-साथ जाति शब्द का निवेशन हुआ है जो निश्चय हीं वर्ण के स्थान पर प्रयुक्त है। सूत्रा का अर्थ है कि जातिवाची शब्द से ‘छ’ प्रत्यय लगाकर उस जाति के एक व्यक्ति का बोध् होता है उदाहरण के लिए ब्राहम्णजातीय, क्षत्रियजातीय आदि। अतः जाति एक अब व्यक्ति के पहचान के रूप में निरूपित किया

Received: 03.05.2019 **Accepted:** 26.05.2019 **Published**: 26.05.2019

This work is licensed and distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (https://creativecommons.org/licenses/by/4.0), which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any Medium, provided the original work is properly cited.

Journal of Advance Research in Science and Social Science (JARSSC) **ISSN:** 2582-2004
Official Publication of Indian Mental Health & Research Centre Volume 02, Issue 02
DOI: 10.46523/jarssc.02.02.26
Multidisciplinary, Open Access
Impact Factor: 3.575

जाने लगा-अमुक व्यक्ति अमुक जाति का है। जाति व्यक्तियों की पहचान बन गई। अतः उक्त विवेचना के आधर पर यह स्पष्ट किया जा सकता है कि जातियों की उत्पत्ति निम्न कारणों से हुई।

अवे डुबोय16 का मत था कि ब्राहम्णों ने अपनी सर्वा्च्चता रखने के लिए यह ;जाति व्यवस्थाद्ध उत्तम युक्ति निकाली। यह राजनीति से प्रेरित चतुर योजना के रूप में स्वीकार किया गया। किन्तु यह विचार ठीक प्रतीत नहीं होता क्योंकि यदि ऐसा होता तो अध्कि शक्तिशाली क्षत्रिय और ध्नी वैश्य वर्गा के विरूद्ध (विद्रोह करते। ओल्डन वर्ग और नेसपफील्ड का मत था कि व्यवसाय पैतृक होने के कारण और डाल्मन का मत था कि व्यापरी शिल्पी अपने व्यवसाय में सपफलता प्राप्त करने के लिए अलग-अलग श्रेणियां थी अतः उनमें आपस में घनिष्ठ संबंध् स्थापित हुए और उनकी अलग-अलग जातियां बन गई। सोनार्ट का विचार है कि एक परिवार के व्यक्ति एक ही पूर्वज की पूजा करते थे और संसार के समय एक प्रीति भोज में सम्मिलित होते थे अतः उनके अलग जाति बन गई।

रिजले का मत है कि प्रजाति भेद और रंग भेद के कारण विभिन्न जातियों की उत्पत्ति हुई। धर्मिक सम्प्रदायों और धर्मिक क्रियाओं में अंतर होने के कारण भी अनेक जातियां बनी जैसे-कि)ग्वेदी, सामवेदी, यजुर्वेदी, ब्राहम्ण, सतनामी, चमार, बिष्नोई, जोगी, गोसाई और महाराष्ट्र में गायन और वैष्णव। प्रादेशिक भेद के कारण भी अनेक जातियों की उत्पत्ति हुई जैस कि गोड़ ;बंगालद्ध मैथिल, कनौजिया और सारस्वत ब्राहम्ण। अलग-अलग प्रजातियों के आधर पर भी अलग-अलग जातियां बन गई जैसे-अरोरा, गूजर, भाटीया, और अहीर आदि।

रोमिला थापर का मत है कि भाषा के आधर पर भी हिन्दु सामाज में जातियों की श्रेष्ठता निर्धरित कि जाति थी। साधरण अनार्य भाषा-भाषी जन-जातियों श्रेष्ठता निर्धरित की जाति थी। साधरण अनार्य भाषा-भाषी जन-जनजातियों का निम्न स्तर दिया जाता था। जैसे कि करात और पुलिंदी। उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि भारतीय जाति व्यवस्था की उत्पत्ति किसी एक कारण से नहीं हुई है उसके अनेक कारण थे। भौगोलिक सामाजिक, राजनितिक, धर्मिक और आर्थिक। जादू-टोना में विश्वास, निषि (वस्तुओं का सेवन, आत्मा के स्वरूप के विषय में विभिन्न विचारों से भी जातियों की उत्पत्ति हुई। जाति व्यवस्था का उद्देश्य मनुष्य की ऐहिक और परलौकिक उन्नति करना था। इस व्यवस्था के द्वारा भारतीयों ने समाज के अनेक पहलुओं का हल ढूढ़ निकाला। प्रत्येक जाति के व्यक्ति ने अपने कर्तव्यों की पूर्ति करके समाज के उत्पत्ति संबंध्ी मनोवैज्ञानिक, आध्यात्मिक और आर्थिक समस्याओं को सरलता से हल करने में अपना योगदान किया।

आज भी जाति व्यवस्था भारतीय समाज का परम्परागत विशेषता बना हुआ है। जाति का मूल आधर जन्मगत है व्यवसाय परम्परागत नहीं । एक हीं जाति के लोग अलग-अलग व्यवसाय का चयन कर सकते हैं भारत विविध संस्कृतियों का समुच्चय है इसलिए भारत की सबसे प्रमुख विशेषता अनेकता

Received: 03.05.2019 **Accepted:** 26.05.2019 **Published**: 26.05.2019

This work is licensed and distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (https://creativecommons.org/licenses/by/4.0), which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any Medium, provided the original work is properly cited.

Journal of Advance Research in Science and Social Science (JARSSC) **ISSN:** 2582-2004
Official Publication of Indian Mental Health & Research Centre Volume 02, Issue 02
DOI: 10.46523/jarssc.02.02.26
Multidisciplinary, Open Access
Impact Factor: 3.575

में एकता है। इसका उल्लेख धर्मिक ग्रन्थों में भी मिलता है। भारत में जातियों की निश्चित संख्या अज्ञात है। पिफर भी विभिन्न समाज शात्रियों का कहना है कि भारत में पाँच हजार से अध्कि जातियां निवास करती है।

सन्दर्भ -

1. रिग्वेद, 10.90.12
2. जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का समाजिक इतिहास , अध्याय-5, पृ0 सं0-143
3. ड्रामा और पोकाक, कन्ट्रिब्यूशन्स टु इण्डियन सोशियोलाजी, पृ. सं0-8-9
4. केतकर, हिस्ट्री अव कास्ट इन इण्डिया, पृ. सं0-15-16
5. दत्त, ओरिजिन ऐण्ड ग्रोथ अव कास्ट इन इंडिया सं0-3
6. पी0वी0 काणे, हिस्ट्री आपफ ध्र्मशास्त्रा, जिल्द-2, भाग-1 पृ. सं0-48
7. शमशास्त्रा अर्थशास्त्रा, पृ. सं0-6
8. उद्वत, नीलकण्ड शास्त्रा दि एज आपफ दी नंदाज एण्ड मौर्याज, पृ. सं0-116
9. महाभारत, वन, 180, 21-38
10. मनु, 10, 11-13, 18-45
11. दशरथ शर्मा, राजस्थान थ्रू दि एजिज, पृ. सं0-442-443
12. रिसले, द पीपुल अव इंडिया पृ. सं0-83
13. रिग्वेद, 7, 33, 2, 5.83.8
14. अथर्ववेद, 3.5, 6.7 तै0 स0 4.5.4.2. तै. ब्रा0 3.4.1
15. निरूक्त, 12-13
16. डुबयास, हिन्दू मैनर्स, कस्टम्स एण्ड सेरेमनीज, पृ. सं0-173

Received: 03.05.2019 **Accepted:** 26.05.2019 **Published**: 26.05.2019

This work is licensed and distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (https://creativecommons.org/licenses/by/4.0), which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any Medium, provided the original work is properly cited.